letter2:letter1.qxd 9/26/2010 8:42 PM Page 108

प्रिय युवा बंधुओं और बहनों, 16 मई, 2005

गत 24 दिसम्बर, 2004 के पत्र में मैंने लिखा था कि ''संसद के दोनों सदनों के सांसद मिलकर स्वयं अपना वेतन, भत्ता तथा पेन्शन बढ़ा लेते हैं। जनप्रतिनिधियों द्वारा अपनाया गया यह तरीका न नैतिक है न ही प्रशासनिक नियमों के अनुकूल है।'' सांसदों की इस स्वार्थसिद्धि को आम लोगों की नजर में ला देने के बाद लोकसभा स्पीकर माननीय सोमनाथ जी चटर्जी ने पहलकर सांसदों के वेतन तथा भत्ते बढ़ाने के लिए एक स्वतंत्र व्यवस्था खड़ी करने के लिए प्रयास प्रारंभ किए हैं। अतः मैं उनका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।

किन्तु इतने भर से भारत के भविष्य-निर्माण का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा। अभी-अभी कुछ ही दिन पूर्व शहीद भगत सिंह का लोक सभा परिसर में स्मारक बनाने के लिए आयोजित सांसदों के सम्मेलन में महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने विधायकों की ख़रीद-फरोख़्त पर चिंता व्यक्त की है। इस ख़रीद-फरोख़्त के घृणित आचरण से पार्टियों के बड़े से बड़े नेता स्वयं को अलिप्त नहीं कह सकते। सत्ता पाने या सत्ता में बने रहने के लिए चाहे जो किया जा रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है।

सन् 2020 तक देश को स्वावलंबी बनाने के राष्ट्रपति के सपने को राजनीतिक दलों के उपर्युक्त आचरण से नुकसान पहुंचने की संभावना से राष्ट्रपति को चिंता होने लगी है। अन्यथा वे विधायकों के ख़रीद-फरोख़्त के विषय की खुले शब्दों में आलोचना नहीं करते।

स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने अपने गौरवपूर्ण अतीत से संबंध-विच्छेद कर लिया है। अपने देश के लिए, अपनी प्रतिभा से, अपने जीवन-मूल्यों पर आधारित संविधान निर्माण करने में अपनी स्वतंत्र बुद्धि काम में ही नहीं लाई गयी। सवा सौ साल से अधिक हमें गुलामी में जकड़े रखने वाले अंग्रेजों द्वारा प्रचलित संसदीय लोकतंत्र की ढुंढात्मक शासन प्रणाली हमने अपने लिए स्वीकार की। परिणामस्वरूप, स्वतंत्र भारत की राजनीति लोकतंत्र के विकास के स्थान पर व्यक्तिवाद की जननी बनी। आज हम देश में राजनतिक दलों का चुना हुआ नेता देख नहीं पाते। हर नेता अपनी मर्जी से जब चाहे नया दल बना लेता है। अतः इसे लोकतंत्र की नहीं, सामंतशाही की तिरस्कृत दिशा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

नवस्वतंत्र भारत की राजसत्ता पर गांधी जी की कृपा से विराजमान नेतृत्व ने ऐसे लोगों को दरकिनार कर दिया, जिन्होंने कंधे से कंधा मिलाकर, सर्वस्व की बाजी लगाते हुए स्वातंत्र्य प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान किया था। नवस्वतंत्र भारत का भाग्योदय करने में उनकी प्रतिभाओं को नजरअंदाज किया गया। अपनी ही मनमानी की गई। आगे चलकर तो श्रष्ट से श्रष्ट राजनेताओं को केन्द्रीय मंत्रिमंडल में स्थान देकर सत्ता हस्तगत करने में भी संकोच नहीं किया। दूसरी ओर, अन्य दल विकऊ विचारकों के आधार पर बेहतर शासन देने की बातें करने में हिचकिचाते नहीं, जबकि उन्हें संयोगवश जहां बहुमत प्राप्त है, वहां भी उन्हें पार्टी में मची गुटबाजी पर काबू पाना मुश्किल हो रहा है। ऐसी हालत में शासन में व्याप्त श्रष्टाचार मिटाकर जनहितकारी कामों को कर पाना उनके लिए कैसे संभव है? यह है स्वतंत्रता के गत 57 सालों से चलती आ रही राजनीतिक यात्रा की कहानी।

स्वतंत्र भारत के राजनेताओं ने सामाजिक जीवन की महत्ता को नहीं समझा। सत्ता पाने के लिए उन्होंने समाज को जिस तरह से चाहा, नोचा-खसोटा है। कुछ नेता कालबाह्य जातिगत भावनाओं को उभारकर समाज को क्षत-विक्षत कर रहे हैं, तो अन्य

स्वतंत्र भारत के राजनेताओं ने सामाजिक जीवन की महत्ता को नहीं समझा। सत्ता पाने के लिए उन्होंने समाज को जिस तरह चाहा, नोचा-खसोटा है।

नेता क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर सत्ता पाने के लिए देश की एकता को हानि पहुंचा रहे हैं। मजहब के आधार पर देश का विभाजन हुआ। इससे सबक लेकर देश के सभी नागरिकों में सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने के स्थान पर सत्ता के लालच में नागरिकों में मजहब के आधार पर अलगाव बढ़ाने में ही लगे हुए हैं।

भारतीय जीवन-दृष्टि किसी को मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी के रूप में नहीं देखती, अपितु वह मानव को मानव मानकर व्यवहार करना सिखाती है। अन्यथा ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा को साकार करने वाली भारतीय संस्कृति अपने समाज में नहीं पनपती।

दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता प्राप्त होते ही सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक नेतागण भी अपना-अपना मूलभूत दायित्व छोड़कर राजनीति की ए-बी-सी-डी न समझते हुए भी सत्ता-संघर्ष में कूद पड़े हैं। फलस्वरूप, भारतीय जीवन की कर्तव्य-पालन की परंपरा जीवन से ओझल होकर, अधिकार-तालसा का व्यक्तिवादी जीवन समाज में गहराता जा रहा है।

वस्तुतः विश्व में कहीं भी अनुकरणीय लोकतंत्र का नमूना दिखाई नहीं देता। विकसित कहे जाने वाले पश्चिमी देशों का चरित्र लोकतांत्रिक विकास के अनुकूल है ही नहीं। दुनियाभर के अविकसित एवं पिछड़े देशों को लूटकर उन्होंने अपना वैभव खड़ा किया है। यूरोप के नागरिकों ने अमेरिका के विशाल भूखण्डों पर, वहां के मूल निवासियों का सफाया कर अपना अधिकार जमा लिया है। उनका लोकतंत्र चुनाव प्रक्रिया तक ही सीमित है। उन्हें लोकतंत्र के पूर्ण विकसित रूप की आवश्यकता अनुभव ही नहीं होती। कारण, उनमें मानवीयता की भावना अभी विकसित होना शेष है। वे अभी तक उपभोग के उपासक बने रहने की ही अवस्था में हैं। उपभोग और अधिकाधिक उपभोग करना ही उनके जीवन का तथ्य है। उपभोगमय जीवन का स्तर ऊंचे से ऊंचा उठाने के लिए अन्य देशों का शोषण करने वाली उनकी प्रवृत्ति अभी भी कायम है। दुनियाभर का विरोध होते हुए भी अमेरिका द्वारा इराक पर हमला करना, उसी प्रवृत्ति का परिचायक है।

विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जिसकी नजर परायों की धन-संपदा पर कभी नहीं रही। प्रभु राम ने किष्किंधा के राजा वालि को मृत्युदण्ड दिया। किन्तु उसके राज्य पर उसी के भाई सुग्रीव को बिठाया। सोने की लंका पर विजय पाकर वहां का सिंहासन रावण के बंधु विभीषण को सौंपा।

भारत अपने प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर वैभव के शिखर पर विराजमान हुआ था। वैभव के शिखर पर पहुंचकर भी वह ऐशो-आराम के मोह में नहीं फंसा। मानव मात्र के समुचित विकास के लिए प्रयत्नशील रहा। ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' की आकांक्षा उसी का निचोड़ है।

इस आकांक्षा को ध्यान में रखकर ही हमारे स्वातंत्र्य संग्राम के अग्रणियों ने बार-बार दोहराया था कि हमारा स्वातंत्र्य संग्राम केवल अपनी राजसत्ता वापिस लौटा लेने के लिए नहीं, अपितु विश्व भर में सह-अस्तित्व का स्नेहमय, सहयोगपूर्ण तथा प्रगतिशील जीवन का अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने के लिए है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र भारत की दिशा क्या होनी चाहिए थी।

अपने परंपरागत चरित्र के अनुसार अपने लोकतंत्र का विकास करना हमारा दायित्व था। लोकतांत्रिक रचना के लिए चुनाव-प्रक्रिया अनिवार्य है। किन्तु चुनाव-प्रक्रिया स्वयं में लोकतंत्र नहीं है, लोकतंत्र के द्वार तक पहुंचाने वाली विधि मात्र है। लोकतंत्र तो चुनाव के बाद ही प्रारंभ होता है।

निर्वाचित जनप्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र के सभी नागरिकों के सक्रिय सहयोग से समाज की युगानुकूल नवरचना करे, यह अपेक्षित है। कारण,

विश्व में कहीं भी अनुकरणीय लोकतंत्र का नमूना दिखाई नहीं देता। विकसित कहे जाने वाले पश्चिमी देशों का चरित्र लोकतांत्रिक विकास के अनुकूल है ही नहीं।